

# प्राचीन भारत में भारत-रोम व्यापार एक अध्ययन

Sonu Kumar\*

M.Phil in History, MDU, Rohtak

सार – प्राचीन काल से भारत विश्व के सुदूर भागों से व्यापार करता रहा है। प्राचीन काल से मसालों और इस्पात का निर्यात होता रहा है। रोम के भारत से व्यापारिक सम्बन्ध थे। वास्को डि गामा 1498 में कालीकट पहुँचा था। उसकी इस यात्रा से पुर्तगाल को इतना लाभ हुआ कि अन्य यूरोपीय भी यहाँ से व्यापार करने को आतुर हो गये। भारतीय व्यापारियों ने 1745 के पहले अजरबैजान के बाकू के पास एक अग्नि मंदिर का निर्माण किया था।

-----X-----

## भूगोल:-

ईसा की पहली दो सदियों में भारत और रोम के व्यापार में वृद्धि हुई। व्यापार की इस उन्नति का कारण रोमन साम्राज्य द्वारा शान्ति स्थापना थी, जिससे खोजों और विकास के एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। पश्चिम और निकट-पूर्व के प्रदेशों के एक साथ जोड़ने में एशिया-माइनर, अरब और उत्तर-पूर्व अफ्रीका के भौगोलिक पहलू भी ठीक-ठीक हमारे सामने आ गए। निकट पूर्व के रोमन व्यापारियों ने अपनी शक्ति और पैसे के जोर से अपने व्यवसाय की काफी उन्नति की। इतना सब होते हुए भी यह अजीब बात है कि व्यापार में रोमन और भारतीय यदा-कदा ही एक-दूसरे से मिलते थे। उनके व्यापार के बिचवई सिकन्दरिया के यूनानी, शामी यहूदी, आर्मेनी अरब, अक्सुसी, सोमाली तथा पूर्व को जानेवाले स्थलपथ के अधिकारी थे।

एशिया माइनर और अरब यूरोप, अफ्रीका और एशिया की भूमि का मुख्य केन्द्र कहे जा सकते हैं, जिसे इटली और भारत के समुद्रतट समान दूरी पर स्थित है। भूमध्यसागर और हिन्दमहासागर, फारस की खाड़ी और लाल सागर की वजह से, एक-दूसरे के पास आ जाते हैं। लालसागर भूमध्यसागर के सबसे पास है और इसी कारण भारत के साथ व्यापार का यह एक खास रास्ता बन गया।

## यातायात:-

एशिया-माइनर और अरब स्थलमार्गों से भी, भूमध्यसागर और भारत का सम्बन्ध जोड़ते थे। इसी प्रदेश में पश्चिम को जानेवाले भारतीय माल के लेनेवाले और देनेवाले तथा व्यापारी

देखे जा सकते थे। इसी मार्ग पर बहुत से नगरों की स्थापना हुई जो व्यापार से फूले-फले।

रोमन राज्य एशिया माइनर, शाम और मिश्र पर तो स्थापित हो चुका था, पर अरब उनके अधिकार में नहीं था, और कोहकाफ के कबीले उनकी बात नहीं मानते थे। भारत में शक-सातवाहन और तामिलगम् के राजे स्थलपथ और बन्दरगाहों पर तनावपूर्वक अपनी हुकूमत स्थिर किए हुए थे, पर इस राजनीतिक गड़बड़ी का भारत के विदेशी व्यापार पर बहुत कम असर पड़ा। व्यापार को उत्साह देने के लिए कनिष्क ने सोने के रोमन सिक्कों की तौल भारतीय सिक्कों के लिए अपना ली। यह आवश्यक था, क्योंकि रोमन सिक्का उस युग में अन्तर्राष्ट्रीय सिक्का बन चुका था।

हाल्मीवंश के राज्यकाल में सिकन्दरिया यूरोप, एशिया और अफ्रीका के व्यापारियों का प्रधान बाजार बन गया। अगस्टस के काल में एक रास्ता, जहाँ तक हो सकता था, लालसागर को बचाता था, और दूसरा उसकी मुसीबतें झेलता था। पहले रास्ते को पकड़ने के लिए नील के रास्ते व्यापारी केना और केफ्त पहुँचते थे। फिर केना के रास्ते वे मुसेल, बन्दर और केफ्त के रास्ते बेरेनिके पहुँचते थे, जो उम्मेल केतेक की खाड़ी के नीचे रासबेनास पर स्थित था। इस रास्ते पर यात्री रात में सफर करते थे। उनके आराम के लिए इन सड़कों पर चट्टियों, हथियारबन्द रक्षकों तथा सरायों और धर्मशालाओं का प्रबन्ध था। ईसा की प्रारम्भिक सदियों में बेनेनिके वाले रास्ते का महत्त्व इसलिए और बढ़ गया, कि जिस प्रदेश से सड़क गुजरती थी उसमें पन्ने की खदानें मिल गई थी।

जहाज सिकन्दरिया से चलकर सात दिनों में हेरूपोलिक की खाड़ी पहुँचते थे, जहाँ दूसरे टाल्मी ने अरिस्नों की नींव डाली थी। वहाँ से वे बेरेनिक और मुसेल के बन्दरगाह पहुँचते थे। मौसमी हवा का भेद न जानने से व्यापारी जहाज किनारे-किनारे चलकर कभी-कभी रासफर्तक को पार करके सिन्धु के मुहाने पर जा पहुँचते थे। रास्ते में वे अद्यूलिस (आधुनिक ज्यूला, मसावा) में अफ्रीकी माल के लिए ठहरते थे। फिर इसके बाद मुजा (मोजा) के पूरब होते हुए वे ओसियेलिस (केला) पहुँचकर बावेलमन्दब के डमरूमध्य से हिन्दमहासागर में पहुँच जाते थे। वहाँ उदन और सोकोतरा के सुभाली बाजारों में भारतीय व्यापारियों से भेंट उनकी होती थी। आगे चलकर वे हद्रमौत में भारत के साथ व्यापार करनेवाले केन और मोजा में ठहरते थे। इनके बाद वे सीधे सिन्धु नदी के बन्दरगाह, बार्बरिक पहुँचते थे, जहाँ उन्हें चीनी, बिब्वती और भारतीय माल मिलता था। फिर दक्खिन की ओर चलते हुए वे भड़ौच पहुँचते थे जहाँ वे कालीकट से कन्याकुमारी तक फैले चेर-राज्य की ओर चलते हुए वे भड़ौच पहुँचते थे जहाँ वे कालीकट से कन्याकुमारी तक फैले चेर-राज्य की सैर करते थे। रास्ते में मुजिरिस (क्रैगनोकर) और नेलकिंडा (कोट्टायम) पड़ते थे। इसके बाद मोतियों के लिए प्रसिद्ध पांड्यदेश की तथा चोलमंडल की वे सैर करते थे।

भारतीय व्यापार में यमनी, नबाती तथा हिमरायती लोगों का भी हिस्सा था और इसलिए वे रोम के साथ भारत के सीधे व्यापार के विरोधी थी। सोमाली समुद्रतट के अरब-अफ्रीकियों ने इस युग में हब्श का अक्षुमी साम्राज्य कायम किया। शायद उन्होंने भारतीयों को बाबेलमन्देव में ओसेलिस के आगे न बढ़ने के लिए मना लिया। हब्श से सिकन्दरिया तक एक स्थलमार्ग चलने पर भी अक्षुमी, यूनानियों से अद्यूलिस (सोमाली बजारों और सोकातरा) में मिलना पसन्द करते थे। इस प्रदेश में यूनानी, अरब और भारतीय रहते थे और भारत से आने-जानेवाले यात्री यहाँ ठहरते थे।

शक-पहलवों की लड़ाईयों से स्थलमार्ग की कठिनायाँ बढ़ गईं। इससे बचने के लिए अगस्टस को समुद्री रास्तों की रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ा। हिमरायती और नबाती इस प्रयत्न में बाधक सिद्ध हुए। पर मौसमी हवा का ज्ञान हो जाने पर इन सब प्रयत्नों की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

अगस्टस के युग में रोमन व्यापारी सेल्यूकिया से क्टेसिफोन पहुँचते थे। फिर वे असीरिया होकर कुदिस्तान से मीडिया पहुँचते थे। वहाँ से बेहिस्तान होते हुए तेहरान के पास से कैस्पियन सागर का रास्ता पकड़ लेते थे। यहाँ से रास्ता जिर्म के पास हेकोटोमपाइलोस होते हुए अन्तिओख मार्गियन (मर्व) पहुँचता था। यहाँ से रास्ते की दो शाखाएँ हो जाती थीं—एक तो

हिन्दूकश को दक्षिण में छोड़ती हुई चीनी कौशेयपथ से जा मिलती थी और दूसरी दक्खिन में भारत की ओर घूम जाती थी। इन दोनों रास्तों का उपयोग खास रोम के व्यापारी कम करते थे। प्लिनी और टाल्मी के अनुसार मर्व से पूरव का रास्ता समकन्द होते हुए वक्षु को पार करता था। एक दूसरा रास्ता मर्व से बलख जाता था, और वहाँ से ताशकुरगन पहुँचता था, जहाँ भारत, वक्षु के काँठे, खोतन और यारकन्द के रास्ते मिलते थे। यहाँ से यारकन्द के काँठे से होता हुआ रास्ता सिंगानकू तक चला जाता था। यह पूरा रास्ता चार सौ पड़ावों में बाँटा गया था।

बलख से हिन्दुस्तान आने के लिए हिन्दूकश पार करना पड़ता था। वहाँ से रास्ता काबुल, पेशावर होते हुए तक्षशिला, मथुरा और पाटलिपुत्र तक चला जाता था। पर जो व्यापारी केवल भारतीयों से ही व्यापार करते थे, वे प्रधान रास्ते से मर्व के दक्षिण घूम जाते थे और आसान मंजिलों में हेरात पहुँच जाते थे, और वहाँ से कान्धार से भारत के लिए तीन रास्ते थे—1. दक्षिण पूर्वी रास्ता जो पहाड़ों को पास करता हुआ बोलन अथवा मूला दर्रे से भारत में उतरता था। 2. उत्तर-पूर्वी रास्ता जो काबुला पहुँचकर कौशेयपथ से मिल जाता था, 3. लासबेलावाला रास्ता जो सड़क या नदी से सोनमियानी की खाड़ी पहुँचता था, और वहाँ से जल अथवा स्थल मार्ग से भारत।

इस स्थल मार्गों से, कम-से-कम अगस्टस के समय में तो, कई भारतीय प्रणिधिर्वग रोम पहुँचे। इस प्रणाधिर्वगों में कम-से-कम चार के उल्लेख लातिनी साहित्य में मिलते हैं। 1. पुरूदेश (झेलम और व्यास के बीच में) का प्रणिधिर्वग अपने साथ रोम को सर्प, मोनाल, शेर और यूनानी भाषा में लिखा हुआ एक पत्र ले गया। 2. भड़ौच से आए प्रणाधिर्वग के साथ जरमानोस नाम का एक बौद्ध श्रमण था। 3. चेर साम्राज्य का प्रणाधिर्वग। {रोम में यह प्रसिद्ध था कि मुजिरिस (क्रैगनोर) में अगस्टस के लिए एक मन्दिर बनवाया गया था।} 4. पांड्य साम्राज्य का प्रणिधिर्वग अपने साथ रत्न, मोती और हाथी लाया था।

इस तरह हमें पता चलता है, कि अगस्टस के समय में भारत और रोम का व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ा। लेकिन व्यापार का पलड़ा आरम्भ से ही भारत के पक्ष में भारी रहा। इसी के फलस्वरूप भारत में रोमन राजाओं के बहुत से सोने के सिक्के मिलते हैं।

### व्यापार:-

समकालीन लातिनी साहित्य में हमें पता चलता है कि रोमन साम्राज्य के आरम्भ में भारतीय माल का दाम रोमन सिक्कों में चुकाया जाता था। हमें इस बात का पता है कि भारतीय सिंह, शेर, गेंडे, हाथी और सर्प रोम में कभी-कभी तमाशे के

लिए लाए जाते थे। रोमन लोग भारतीय सुग्गे भी पालते थे। भारतीय हाथीदाँत और कछुए की खोपड़ी का व्यापार गहने बनाने के लिए होता था। रोमन स्त्रियाँ भारतीय और चीनी मोती बड़े चाव से पहनती थीं। जड़ी-बूटियाँ और मसाले भी इस व्यापार के मुख्य अंग थे। काली मिर्च, जटामांसी, दालचीनी और इलायची अधिकतर स्थलमार्ग द्वारा अरब यात्री लाते थे। दवाओं में उपर्युक्त वस्तुओं के सिवाय सोंठ, गुगुल, बायबिंडिंग, शक्कर और अगर होते थे। हमें इस बात का भी पता चलता है कि रोमन लोग भारतीय तिल के तेल का भी खाने में उपयोग करते थे। नील का रंग की तरह व्यवहार होता था। सूती कपड़े पहनने के काम में लाए जाते थे तथा आबनसू के साज-समान बनते थे। चावल खाद्यान्न माना जाता था तथा भारतीय नींबू, आड़ू और जर्दालू खाने तथा औषध के काम में आते थे। बहुत तरह के कीमती और साधारण रत्न, जैसे-हीरा, शेष (ओनिक्स), सार्डोनिक्स, अकीक सार्ड, लोहितांक, स्फटिक जमुनिया कोपल, वैदूर्य, नीलम माणिक, पिरोजा, कोरराड़ (गार्नेट) इत्यादि की रोम में बहुत माँग थी। इस सबका दाम रोम को सोने में चुकाना पड़ता था, और इससे राष्ट्र के धन का बड़ा उपव्यय होता था। टाइबीरियस ने इस अन्धाधुन्ध खर्च को रोकने का प्रयत्न भी किया था, पर उसका कोई परिणाम नहीं निकला।

मौसमी हवा का पता चल जाने पर इटली से भारत तक की यात्रा करीब सोलह हफ्तों में या औसतन छह महीनों में होने लगी। मुसेलहार्बर (रासअबूसोमेर) से यात्रा करीब मकरसंक्रान्ति के सम, जब अफ्रीका और दक्षिण अरब से अनुकूल उत्तर-पश्चिम की हवा चलती थी, आरम्भ होती थी। भारत और लंका की ओर जानेवाले यात्री जुलाई में अपनी यात्रा इसलिए आरम्भ करते थे कि लालसागर पहली सितम्बर के पहले पार कर जाने पर उन्हें अरब समुद्र में जहाज के अनुकूल मौसमी हवा मिल जाती थी।

जिस जहाज से पेरिप्लस के लेखक ने भारत यात्रा की, वह यों ही साधारण-सा जहाज रहा होगा, जिसमें शायद एक गज पर लगा ऊपरी तिकोना पाल लगता था। भारतीय समुद्र में समय की बहुत पाबन्दी करनी पड़ती थी, क्योंकि उस समय की जहाजरानी बहुत कुछ व्यापारी हवाओं पर अवलम्बित होती थी। जहाज के पाल हवा से भरकर उन्हें आगे चलाते थे। ऐसे समय पतवार लगाने की भी बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी। पतवार आड़े और गलही के बीच में होती थी। कर्णधार गलही पर बने एक ऊँचे मचान पर बैठकर पतवार चलाता था। हिपालुस द्वारा मौसमी हवा की खोज से पतवार चलाने की क्रिया पर भी कुछ प्रभाव पड़ा। मौसमी हवा में हवा के रूख से कुछ हटकर पतवार चलाई जाती थी, जिससे जहाज सीधा न चलकर दक्खिन की ओर मुड़ जाए। जहाज चलाने की यह क्रिया कुछ तो पतवार के

घुमाव-फिराव से और पाल के हटाने-बढ़ाने से साध ली जाती थी।

रोमन व्यापारियों की यात्रा मायोस-होरमोस अथावा बेरिनिके से शुरू होती थी। यह बन्दर पहली सदी में मिस्त्र के पूर्वी व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ से जहाज उत्तर अफ्रीका के बर्बर देश में पहुँचता था। फिर वहाँ से, वह जहाज अद्युलिस पहुँचता था, जहाँ आजकल मलावा का बन्दरगाह है, जो हब्श और सूडान के लिए एक प्राकृतिक बन्दरगाह का काम करता है। इस प्रदेश के भीतर कोलो नाम के शहर में हाथी दाँत का काफी व्यापार चलता था। यहाँ के बाद जहाज ओपियन पत्थर की खाड़ी में पहुँचता था, जिसकी पहचान रासहन्फिला के उत्तर हौकिल की खाड़ी से की जाती है। यह आॅब्सीडियन पत्थर भारत, इटली और पुर्तगाल में मिलता था, और शीशा बनाने में उसका काफी उपयोग होता था।

उपर्युक्त प्रदेशों में मिस्त्री क्षोम, अरसियोन के कपड़े, मामूली किस्म के रंगीन कपड़े, दोहरी झालवाली क्षौम की चादरें, बिना साफ किया शीशा, अकीक अथवा लोहितांक के असली अथवा नकली प्याले जिसे मुरिया प्याले कहते थे, लोहा, पीतल और ताँबे की लचीली चादरें आती थीं। इनके अतिरिक्त कुल्हाड़ियाँ, तलवारें, बर्तन, सिक्के, थोड़ी मात्रा में शराब और जैतून का तेल भी आता था।

अरिया के अथवा खम्भात की खाड़ी के प्रदेश से लाल समुद्र के बन्दरों में भारतीय इस्पात, कपड़े-पटके, चमड़े के कोट तथा मलय कपड़े आते थे।

हौकिल की खाड़ी से अरब की खात पूरब की ओर मुड़ जाती थी, और उसके तट पर अवलाइटिस पड़ता था, जिसकी पहचान बाबेलमन्देव से 79 मील दूर जैला से की जाती है यहाँ तरह-तरह के फ्लिंट शीशे, थेबीज के खट्टे अंगूर का रस, बर्बरों के लिए एक खास तरह का कपड़ा, गेहूँ, शराब और कुछ राँगे का आयात होता था। यहाँ से ओसिलिस और मूजा को हाथीदाँत, कछुए की खोपड़ियाँ और थोड़ी मात्रा में मुरा और लोहबान जाते थे।

अवलाइटिस से करीब 80 मील पर, (आधुनिक ब्रिटिश सुमालीलैंड में बर्बर बन्दरगाह) माली से, जहाँ से भीतरी व्यापार के लिए आज भी कारवाँ चलते हैं, जहाज से मुरा और लोहबान का निर्यात होता था।

मालो से चलकर जहाज मुराडुस पहुँचता था, जिसकी पहचान बन्दरहैस से की जाती है। मुराडुस से दो या तीन दिन की यात्रा

के बाद जहाज मोसिल्लम (रासहन्तारा) पहुँचता था। यहाँ दालचीनी का व्यापार यथेष्ट मात्रा में होता था। यहाँ के बाद छोटीनील (तोकवीना) और केप एलिफेंट (रासफील) के बाद अकानी (बन्दरउलूल) पड़ता था। उसके बाद मसालों की खाड़ी पड़ती थी, जिसकी पहचान गार्दाफुई की खाड़ी से की जाती है। यहाँ लंगर डालने में भय रहता था, और इसलिए जहाज तूफान में ताबी (रास चेनारीफ) के अन्दर घुस जाते थे। यहाँ से चलकर जहाज पनाओं (रासबेन्ना) पहुँचता था, जहाँ उसकी दक्षिण-पश्चिम मौसमी हवा से रक्षा होती थी। यहाँ के बाद ओपी (रास हाफून) आता था, जो गार्दाफुई से नब्बे मील नीचे है।

उपर्युक्त बन्दरगाहों में आरियाके और बेरिगाजा (भड़ौच) से गेहूँ चावल, घी, तिल का तेल, शराब, सूती कपड़े और पटके आदि आते थे। यहाँ माल लानेवाले भारतीय जहाज, केप गार्दाफुई में माल का हेर-फेर करके उनमें से कुछ तो किनारे-किनारे आगे बढ़ जाते थे, और कुछ पश्चिम की ओर बढ़ जाते थे। पेरिप्लस (25) के अनुसार, लालसागर के मुहाने पर ओसिलिस उसका अन्तिम लक्ष्य होता था, क्योंकि उसके बाद अरब उन्हें आगे नहीं बढ़ने देते थे। पर भारत और गार्दाफुई के बीच का अधिकतर व्यापार भारतीयों के हाथ में था। कुछ व्यापार अरबों के साथ में था और पहली सदी में मिस्त्र के यूनानी व्यापारियों ने भी इसमें कुछ हाथ बँटाया।

ओपोन के बाद, दक्षिण में अजानिया (हाजिन समुद्रतट) के कगारे पड़ते थे। कगारों के बाद छोट-छोटे बलुए मैदान (सेफ अलतबील) और इसके बाद अजानिया के बलुए समुद्रतट आते थे। आगे सरापियन (मोगादिशु) और निकन (बरावा) पड़ते थे। अजानिया नाम आधुनिक जंजीबार से बन गया है, जिसकी व्युत्पत्ति शायद जंग 'काला' और 'बार' समुद्री के बाद पिरलाइ के टापू (आधुनिक पत्ता, मन्दा और लामू) पड़ते थे। इनके पीछे जहाज चलने का एक सुरक्षित रास्ता था। फिर जहाज औसानी समुद्र तट पर, जिसका नाम दक्षिण-अरब से औसन जिले से निकला है, आता था। इसी समुद्रतट पर मेनूथियास पड़ता था। वहाँ से जहाज रहफ्त, जिसकी पहचान आधुनिक किलवा से की जाती है, पहुँचता था। अरब जहाजियों को इस समुद्री किनारे का पूरा पता था।

ओपोन के बाद अधिकतर व्यापार मुजा के कब्जे में था, जिसका मसाला नाम का बन्दर लाल समुद्र पर था भारतीय माल के लिए रोमन व्यापारी इस बन्दर में नल जाकर अदन अथवा डायोसकोडिया यानी सोकोत्रा आते थे, जहाँ उनकी यूनानी, भारतीय और अरब व्यापारियों से भेंट होती थी। मोचा में तो रोमन व्यापारी भारत से लौटते हुए केवल ठहर भर जाते थे।

मोचा अरब व्यापारियों का, जो अपने जहाज भरूकच्छ भेजते थे, मुख्य अड्डा था।

मोचा के बाद बाबेलमन्देब का जलडमरूमध्य पार करके जहाज डायोडोरस (पेरिम टापू) पहुँचता था। इसके बाद ओसिलिस की खाड़ी (शेख सैयद के अन्तर्राष्ट्रीय के उत्तर एक खाड़ी) आती थी, जो अरबिस्तान के किनारे से निकलती और पेरिस से एक पतले रास्ते द्वारा अलग होती थी। इस बन्दरगाह के आगे भारतीय नाविक नहीं बढ़ते थे। इसके बाद जहाज यूडेसन अरेबिया यानी आधुनिक अदन पहुँचते थे। अदन का बन्दरगाह बहुत प्राचीन काल से पूर्वी व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। चहाँ से भूमध्यसागर के लिए माल जहाज पर चढ़ाया जाता था। अदन से शायद पूरे यमन का भी मतलब हो सकता है। अदन के बाद जहाज काना (हिस्न गोरब) पहुँचता था। हिपालुस द्वारा मौसमी हवा का पता लग जाने के बाद यात्री अक्सर काना छोड़ देते थे। वे यात्री जो जहाजरानी के मौसम के अन्त में सफर करते थे, मोजा में जाड़ा बिताते थे। अदन और मोजा लोबान के व्यापार के बड़े केन्द्र थे। लोबान यहाँ हद्रमौत से, जिसे लोबान का देश कहते थे, आता था। तुरूष्क और धिक्कुआर के इस का भी व्यापार होता था।

काना के बाद सचलाइटिस की खाड़ी पड़ती थी, जिसकी पहचान रास एलकल्ब और रास हसीक के बीच में पड़नेवाले साहिल से की जाती है। इसके बाद जहाज स्माग्युस (रासफर्तक) होते हुए डायोस कोरिडिया पहुँचता था, जिसकी पहचान आधुनिक सोकोत्रा से की जाती है डायोसकोरिडिया नाम में विद्वानों को मिस्त्री देवता होर या खोर का नाम मिलता है, और बहुत सम्भव है, कि सुप्पारकजातक का खुरमाली समुद्र यही हो। सोकोत्रा, अब्राहम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रधान केन्द्र था। यहाँ मिस्त्र के जहाजी अरब, अफ्रीका, खम्भात की खाड़ी और कच्छ के रन से आए हुए भारतीय व्यापारियों से मिलते थे।

सोकोत्रा के बाद जहाज ओमाना (कमर की खाड़ी), मोज्जा बन्दरगाह (खोररैरी) जेनोबिया के टापू (कुरिया मुरिया), सरापिस (मसिरा टापू) होते हुए मस्कत के उत्तर पश्चिम काली (दमानियन) द्वीप पहुँचता था। यहाँ से जहाज अपोलोगस (अफरात पर ओबोला का बन्दर), ओम्माना (शायद अलमुकल्वेर) होते हुए फारस की खाड़ी में पहुँचता था। फारस की खाड़ी के बन्दरगाहों में भारत से ताँबा और चन्दन, सागवान, शीशम तथा आबनूस की लकड़ियाँ आती थीं।

जहाज फारस की खाड़ी से होकर गेड्रोशिया की खाड़ी को, जो रासनू से केप मॉज तक फैली हुई थी, पार करके ओरी, अथवा

सोननियानी की खाड़ी तक पहुँचता था, और यहाँ से होते हुए वह सिन्धु के बन्दरगाह बार्बरिकोन में पहुँचता था।

अरब और सोमाली व्यापारी आपस में समझौता करके भारतीय जहाजों को लाल सागर के अन्दर नहीं जाने देते थे, जिसके फलस्वरूप वे ओसिलिस से आगे नहीं बढ़ पाते थे। लेकिन जल्द ही अरबों और सोमालियों को हब्श और रोमन व्यापारियों को मुकाबला करना पड़ा, जिसके फलस्वरूप लालसागर का रास्ता खुल गया और उस रास्ते से होकर जल्दी ही भारतीय व्यापारी अधूलिस और सिकन्दरिया के बन्दरगोहों में सीधे पहुँचने लगे। कम-से-कम मिलिन्दप्रश्न से तो यही पता लगता है कि भारतीय नाविकों को सिकन्दरिया का पूरा पता था रोम साम्राज्य के यूनानी व्यापारी धीरे-धीरे भारतवर्ष की सीधी यात्रा करने लगे। उनके जहाज अरब के बन्दरगाहों पर कम रुकते थे। वे केवल ओसिलिस पर रुककर तथा अपने जहाजों में ताजा पानी भरकर सीधे भारत की ओर रावाना हो जाते थे। पीछे बहती हुई दक्षिणी-पश्चिमी मौसमी हवा उनके जहाजों को सीधे सिन्धु नदी के मुहाने तक पहुँचा देती थी। सिन्धु के सात मुखों में, बीच के मुख पर बार्बरिकोन का बन्दरगाह था। इस बन्दरगाह का नाम शायद उन बाबारियों की वजह से ही पड़ा जो अब भी सौराष्ट्र में पाए जाते हैं।

पेरिप्लस (31) से पता चलता है कि बार्बरिकोन के बन्दरगाह में काफी तादाद में महन कपड़े, नक्काशीदार क्षौम, पुखराज, तुरूष्क, लोबान, शीशे के बर्तन, चाँदी-सोने के बर्तन और थोड़ी मात्रा में शराब भी आती थी। इस बन्दरगाह से कुष्ट, गुगुल, लिसियम, नलद, पिरोजा, लाजवर्द, चीनी कपड़े, रेशम और नील बाहर भेजे जाते थे।

बार्बरिकोन से जहाज भरूकच्छ की ओर चल पड़ते थे। भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रान्तका नाम पेरिप्लस के अनुसार अरिम्भके और टॉल्मी के अनुसार लारिके था। कच्छ के रन को सिकन्दरिया के यवन ईरीनन कहते थे, जो संस्कृत ईरिण का रूपान्तर है। आज ही की तरह रन का पानी छिछला था और खिसकते बालू से जहाजरानी में बड़ी मुश्किलें पड़ती थीं। बरका की खाड़ी की विपत्तियों से बचने के लिए जहाज उसके बाहर-बहार ही रहते थे। पर उसके भीतर चले जाने पर प्रचंड लहरों और भँवरों के थपेड़े में पड़कर वे नष्ट हो जाते थे। कुछ जहाजों में नुकीले और पथरीले तल होने से या तो लंगर जमीन पकड़ ही नहीं सकते थे, अथवा जमीन पकड़ लेने पर उनके खिसक जाने का भय बना रहता था (पेरिप्लस, 40)। बेरीगाजा या भड़ोच तक जानेवाली खाड़ी बहुत पतली थी और उसके मुहाने पर पानी में छिपा हुआ लम्बा पतला और पथरीला कगार था। किनारों के

निचाई में होने से नदी में भी जहाज चलाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। इन सब कठिनाईयों से जहाजों की रक्षा करने के लिए ट्राप्पगा और कोटिम्बा की भाँति बड़ी-बड़ी नावों में राज्य की ओर से नदी के मुहाने पर नाविक तैयार रहते थे। ये नविक समुद्रतट के ऊपर चलकर काठियावाड़ा तक पहुँच जाते थे। और जहाजों के पथ-प्रदर्शक का काम देते थे। वे खाड़ी के मुहाने से ही जहाजों को पानी के अन्दर छिपे कगार से बचाकर निकाल ले जाते थे और उन्हें भरूकच्छ की गोदियों तक पहुँचा देते थे। वे ज्वार के साथ-साथ जहाजों को बन्दर में ले जाते थे, जिससे वे भाटा के समय तक गोदियों और गर्तों में अपने लंगर डाल सके। नदी में, भड़ोच तक के तीस मील के रास्ते में बहुत से गहरे गन्त पड़ते थे। (पेरिप्लस, 44)। गहरे ज्वार-भाटा की वजह से इस खाड़ी में पहले-पहल आनेवालों को जहाज चलाने में बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। ज्वार इतने झोंके से आता था कि उसमें फँसकर जहाज टेढ़े हो जाते थे। और इस तरह जल में छिपे कगारों में फँसकर नष्ट हो तो थे। छोटी-छोटी नावें तो एकदम उलट जाती थी। (पेरिप्लस, 46)।

कच्छ के रन का बलुआ मैदान 140 मील लम्बा और 60 मील चौड़ा था। बरसात में नालियों में समुद्र भर आ जाता था और तीन फीट गहरे पानी की चादर छोड़ देता था। लेकिन इनके समतल होने से ऊँटों के कारवाँ हर मौसम में यात्रा सकते थे। ये कारवाँ दिन की कड़ी धूप और मृगमरीचिका से बचने के लिए रात में यात्रा करते थे। दिशा जाने के लिए ये नक्षत्रों और कुतुबनुमा का सहारा लेते थे। ऐतिहासिक काल में शायद कच्छ समुद्री व्यापार का एक मुख्य केन्द्र था। कच्छ के दक्खिनी किनारे पर मांडवी बन्दर का जंजीबा के साथ काफी व्यापार होता था।

भड़ोच की खाड़ी की प्राकृतिक बनावट के बारे में भी पेरिप्लस से कुछ पता लगता है। पापिका के अन्तरीप की पहचान गोपीनाथ पाइंट से की जाती है तथा बड़ओन्स की पहचान नर्मदा के मुहाने के दूसरी ओर मीरम टापू से की जाती है, जो बालू से ढँका रहता था और जिसके चारों ओर पत्थरों की रीफ 60 या 70 फीट तक ऊपर उठी हुई थी।

### व्यापारिक वस्तुएँ:-

भड़ोच और उज्जैन के बीच काफी व्यापारिक सम्बन्ध था (पेरिप्लस, 48)। उज्जैन से भड़ोच को गुजरात में खपनेवाले हर तरह के माल और यूनानी व्यापारियों के काम के पदार्थ, जैसे-अकीक, लोहिताक, मलमल, मलय वस्त्र तथा अनेक प्रकार के

साधारण कपड़े आते थे। उज्जैन तथा उत्तर भारत के पुष्करावती, कश्मीर, काबुल और मध्य एशिया से जटामाँसी, कुष्ठ और गुगुल आते थे।

भड़ोच के बन्दरगाह में विदेशों से भी तरह-तरह के माल उतरते थे। इनमें विशेष करके इटली, लाओडीस और अरब की कुछ शराब, ताँबा, राँगर और पोखराज, एकबित्ता चैड़े लम्बे पटके, तुरूष्क, स्वीटक्लोवर्स, फिलटम्लास, संखिया, सुरमा, चाँदी-सोने के सिक्के, जिनको देशी सिक्कों में बदलने से फायदा होता था तथा कुछ औसत कीमत के रोगन होते थे। राजा के लिए चाँदी के कीमती बर्तन, गानेवाले लड़के, महलों के लिए सुन्दर स्त्रियाँ, बढ़िया शराब, बारीक कपड़े और अच्छे-से-अच्छे रोगन आते थे (पेरिल्पस 49)।

भड़ोच से निर्यात होनेवाली वस्तुओं में जटामाँसी, कुष्ठ, गुगुल, हाथीदाँत, अकीक, लोहितांक, लिसियम, सब तरह के कपड़े, रेशमी कपड़े, मलयवस्त्र, सूत, बड़ी पीपल तथा दूसरी चीजें जो भारत के भिन्न-भिन्न बाजारों से यहाँ पहुँचती थीं, मुख्य थीं (पेरिल्पस, 49)।

पेरिल्पस (51) के अनुसार पैठन और तेरे से बहुत बड़े पैमाने पर लोहितांक आता था। तगर से साधारण कपड़े, सब तरह की मलमलें, मलय वस्त्र और बहुत तरह के माल भड़ोच पहुँचते थे।

वेरीगाजा के अतिरिक्त आसपास में सुप्पारा (सोपारा) और कल्लियेन (कल्याण) व्यापारिक बन्दरगाह थे। पेरिल्पस के समय, कल्याण शायद कनिष्क के अधिकार में था और इसलिए वहाँ व्यापार करने की आज्ञा नहीं थी। वहाँ व्यापार करने की आज्ञा नहीं थी। यहाँ पर लंगर डालनेवाले यूनानी जहाजों को कभी-कभी गिरफ्तार करके भड़ोच भेज दिया जाता था।

कल्लियेन के बाद सेमिल्ला (बम्बई से दक्खिन, चैल), मन्दगोरा (सावित्री नदी के मुहाने पर बानकोट), पालीपटमी (आधुनिक डाभोल), मेलिजिगारा (आधुनिक जयगढ़), तोगरम् (देवगढ़), औरान्नबोआस (मालवान), सेसिसक्रिएनी (शायद बेनगुर्ला की चट्टानें), एगिडाइ (गोवा या आँजीदीव), केनिताई द्वीप (आयस्टर राक्स), कारबार के समुद्री मार्ग के पश्चिम में द्वीप समूह, चेरसोनेसस (कारबार, तथा श्वेत), द्वीप (नित्रान या पीजन आइलैंड) पड़ते थे। इसके बाद ही इमरिका या तामिलकम् का पहला बन्दर नौरा (कानानोर या होणवार) पड़ता था। इसके बाद टिडिस (पोन्नानी) पड़ता था। मालाबार के प्रसिद्ध बन्दर मुजिरिस की पहचान केंगनोर से की जाती है और शायद नेलकिंडा तावणकोर में कोट्टायम् के कहीं आस-पास था (पेरिल्पस, 53)। मुजिरिस में अरबों और यूनारियों के माल से भरे जहाज पड़े रहते थे। यह बन्दर टिडिस (तुंडि) से 50 मील

तथा एक नदी के मुहाने से दो मील पर था। नेलकिंडा मुजिरिस से 50 मील दूर पांडयों के राज्य में पड़ता था (पेरिल्पस 54)।

इन बन्दरगाहों में बड़े-बड़े जहाज काली मिर्च और तेजपात लेने आते थे। इनमें सिक्के, पोखराज, कुछ पतले कपड़े, मूँगे के गदला, सीसा, ताँबा, राँगा, थोड़ी मात्रा में शराब, संगरफ, संखिया, कुछ पतले कपड़े, मूँगे के गदला, सीसा, ताँबा, राँगा, थोड़ी मात्रा में शराब, संगरफ, संखिया और नाविकों के लिए गेहूँ आता था। उनमें से कोटोनारा (उत्तरी मालावार) को गोलमिर्च, अच्छे किस्म के मोती, हाथीदाँत, रेशमी कपड़े, गंगा प्रदेश के जटामाँसी, तेजपात, सब तरह के पादर्शी रत्न, हीरे, नीलम तथा सुवर्णद्वीप और तामिल्कम से मिली कछुए की खोपड़ियाँ बाहर भेजी जाती थीं। मिस्त्र से इस प्रदेश में यात्रा करने का समय जुलाई का महीना होता था (पेरिल्पस, 56)।

चेरबोध, यानी केरल से बहुत काफी मिर्च आती थी। एक समय केरल कन्याकुमारी में कारवार पाइंट तक फैला हुआ था लेकिन पेरिल्पस के समय में इसका उत्तरी भाग केरलों के हाथ से निकल चुका था और दक्षिणी भाग पांडयों के हाथ में चला गया था इसलिए तत्कालीन केरल मालावार, कोचीन और उत्तरी त्रावनकोर तक ही सीमित रह गया था टिडिस उसका उत्तरी बन्दरगाह था, लेकिन उसका सबसे प्रसिद्ध बन्दर मुजिरिस था। इस बन्दर में रोमन और अरब जहाज रोम का माल भारतीय माल से बदलने को लाते थे और नकद रूप देकर भी माल खरीदते थे। प्लिनी के अनुसार यहाँ पहले-पहल आनेवाले व्यापारी चेरों के साथ बिना बोले व्यापार करते थे। यहाँ अगस्टस से समादर में एक मन्दिर भी था। मुजिरिस के दक्खिन नेलकिंडा के जहाज पोरकड में खड़े होते थे। पेरिल्पस के समय नेलकिंडा पांडयों के अधिकार में था और इसे मानने का यह कारण है कि पांडयों को केरलों के प्रति मिर्च के व्यवसाय के कारण ईर्ष्या थी। प्लिनी से यह पता चलता है कि जो यूनानी व्यापारी नेलकिंडा पहुँचते थे, उनसे पांडस यह कहते थे कि मुजिरिस में माल कम मिलता है।

पांडय-साम्राज्य उस समय मदुरा और तिन्नवेली तथा त्रावनकोर के भाग में स्थिर था तथा मनार की खाड़ी मोतियों के लिए, जिन्हें कोलकोई (कोरककै, ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर) के अपराधी समुद्र से निकलते थे, प्रसिद्ध था।

चोलमंडल में चलनेवाले जहाजों के भारीपन का पता हमें यज्ञश्री शातकर्णि के उन सिक्कों से चलता है, जिन पर दो मस्तूल होते थे। मुसलिपट्टन मलमल के लिए और उड़ीसा हाथीदाँत के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। पेरिल्पस के अनुसार आधुनिक बंगाल के इलाके से तेजपात और चीनी रेशम का व्यापार होता था। पांडिचेरी के पास वीरमट्टनम् की खुदाई से

पता चलता है कि वहाँ रोमन व्यापारियों का अड्डा था टाल्मी के भूगोल के अनुसार मथुरा और कश्मीर के अद्वारह नगरों का व्यापारिक सम्बन्ध रोम से था। इस समय आधुनिक कर्णाटक के उत्तर में स्थित चोल बन्दरगाह भड़ौच की तरह प्रसिद्ध बन्दरगाह हो गया था। पांड्यों की नगरी मदुरा मोती के निर्यात के लिए प्रसिद्ध थी और चेरों द्वारा काली मिर्च का निर्यात किया जाता था।

तीसरी सदी के पश्चात् रोमन व्यापार में हनास की बात हम स्रोतों में पाते हैं। भारत से दास, सुग्गा, बन्दर, शेर, चीता, कुत्ता, चीनी खालें, गँड़ा, हाथी, रँगीन चमड़े, बकरों की खालें, मारकोकोरमलाना अर्थात् पश्मीना, कछुए की खोपड़ियाँ, मोती, चीनी रेशम, शंख, जड़ी-बूटियाँ, काली मिर्च, दालचीनी, धूप, तेजपात, नलद का तेल, सूती कपड़े, तिल का तेल, नारियल का तेल, चन्दन, सागवान, काली लकड़ी, गुलाबी लकड़ी, आबनूस, केला, आलू, चावल, गेहूँ, कर्पूर, जायफल इसमी, बहेरा, देवदार, पान, सुपारी, बहुमूल्य रत्न शंखिया आदि निर्यात का तेल, चन्दन, सागवान, काली लकड़ी, गुलाबी लकड़ी, आबनूस, केला, आलू, चावल, गेहूँ, कर्पूर, जायफल, इमली, बहेरा, देवदार, पान, सुपारी, बहुमूल्य रत्न, शंखिया आदि निर्यात किए जाते थे। इतने प्रकार की वस्तुओं की इतने बड़े पैमाने पर निर्यात की बात हमें अन्य किसी काल में देखने को नहीं मिलती।

इस बड़े पैमाने पर व्यापार के परिणामस्वरूप ही भारत में इस काल में बड़े पैमाने पर बड़े-बड़े व्यापारिक नगरों एवं धनी व्यापारियों की चर्चा देखने को मिलती है।

### विशेष सन्दर्भ:

1. ब्रजनन्दनसिंह यादव, 'कलियुग के वर्णन और समाज का प्राचीनकाल से मध्यकाल में संक्रमण, इतिहास, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की शोध-पत्रिका, दिल्ली, अंक 1, जनवरी, 1992, पृ. 66-99
2. बंगाल में गंगा की मुख्यधारा पद्मा के उत्तर में स्थित प्रदेश पुंड्र और दक्षिण का भाग वंग कहलाता था; विजयेन्द्रकुमार माथुर, ऐतिहासिक स्थानावली, नई दिल्ली, 1969, पृ. 562
3. वही, 4.15.16, मनोहरलाल द्विवेदी, कात्यायन यज्ञ पद्धति विमर्श, दिल्ली, 1988, पृ. 82-84
4. भगवतशरण उपाध्याय, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1969, पृ. 194-95

5. भगवतशरण उपाध्याय, पूर्वोद्धत, पृ. 198
6. बौद्धधर्म का इतिहास (तारनाथ), पटना, 1971, पृ. 57
7. देवयाज्ञिक पद्धति, पृ. 131, मनोहरलाल द्विवेदी, पूर्वोद्धत, पृ. 85
8. कात्यायन श्रौतसूत्र, 4.15.11

---

### Corresponding Author

**Sonu Kumar\***

M.Phil in History, MDU, Rohtak

[sonukumarsharma415@gmail.com](mailto:sonukumarsharma415@gmail.com)